P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-6, ISSUE-4, May- Supplementary Issue - 2018
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

भारत में बढ़ती सामाजिक व आर्थिक विषमताएं : समावेशी विकास की चुनौती

सारांश

भारत में सामाजिक व आर्थिक विषमताओं की जड़े बहुत गहरी हैं। भारतीय समाज तथा अर्थव्यवस्था में अनेकों विरोधाभास दिखाई पड़ते हैं। एक ओर कुशल व उच्च प्रशिक्षित मानव पूंजी है तो दूसरी ओर निर्धन, अकुशल व अशिक्षित लोग हैं। इसी प्रकार जहां एक ओर आधुनिक व सम्पन्न शहरी क्षेत्र है तो वहीं दूसरी ओर ठीक इसके उलट पिछड़ा व अभावग्रस्त ग्रामीण क्षेत्र।

आर्थिक सुधारों (1991) के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है तथा अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता एवं आकार बढ़ा है। हमारे देश में 'नीचे की ओर रिसाव' की अवधारणा असफल रही है जिसके कारण तीव्र आर्थिक संवृद्धि का लाभ समाज के सभी वर्गों तथा राष्ट्र के सभी क्षेत्रों तक समान रूप से नहीं पहुंचा है परिणामस्वरूप विषमताएं एवं अन्तराल बढ़ गये हैं। प्रस्तुत पत्र में बताया गया है कि एक स्वस्थ्य लोकतंत्र तथा सुस्थिर विकास वाली आर्थिक प्रणाली में सामाजिक व आर्थिक समावेशीकरण आवश्यक है। अवसरों की उपलब्धता एवं सामाजिक समानता सुनिश्चित करना भारतीय लोकतंत्र व नीति निर्माताओं के लिए चुनौती है।

मुख्य शब्दः आर्थिक विषमताएं, सामाजिक असमानताएं, आर्थिक सुधार, भारतीय अर्थव्यवस्था, समावेशी विकास।

आसीन खाँ
सहायक आचार्य,
अर्थशास्त्र विभाग,
राजकीय महाविद्यालय
बीबीरानी, अलवर, राजस्थान

प्रस्तावना

भारत एक उभरती हुई आर्थिक शक्ति के साथ–साथ विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। देश में जहां एक और बड़ी संख्या में प्रशिक्षित व कुशल श्रमशक्ति, गुणवत्तापूर्ण तकनीकी व प्रबन्धकीय प्रतिभाएं तथा बड़ा युवावर्ग है वहीं दूसरी ओर उच्च शिशु मृत्युदर, बड़ी संख्या में महिलाओं व बच्चों में रक्ताल्पता (एनीमिया) तथा कुपोषण जैसी समस्याएं हैं। भारत में सामाजिक व आर्थिक विषमताएं दशकों से विद्यमान हैं परन्तु उदारीकरण के बाद ये तेजी से बढ़ी हैं।

भारत की जनगणना–2011 के अनुसार कुल 121 करोड जनसंख्या में 58.64 करोड़ महिलाएं, 20.14 करोड दलित, 10.45 करोड़ आदिवासी तथा 17.22 करोडमुस्लिम अल्पसंख्यक हैं। लगभग सात दशकों की लोकतांत्रिक प्रक्रिया के बाद भी आर्थिक विकास का लाभ समाज के इन वर्गों को समान रूप से नहीं मिला है। महिला, दलित, आदिवासी तथा मुस्लिम अल्पसंख्यक भारतीय समाज के वंचित वर्ग हैं तथा दलित व मुस्लिम बहिष्कृत।

आर्थिक सुधारों के बाद देश के उत्तरी व पूर्वी राज्यों की तुलना में दक्षिणी व पश्चिमी राज्यों का सामाजिक व आर्थिक विकास अधिक तीव्र गति से हुआ है। इसके कारण क्षेत्रीय स्तर पर आर्थिक विषमताएं बढ़ गई जिसके फलस्वरूप आय, रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि सूचकों में अन्तराल बढ़ा है। ग्रामीण–शहरी विभाजन गहरा हो गया। जहां एक ओर आर्थिक समृद्धि के कारण शहरों में सम्पन्नता तेजी से बढ़ी है वहीं दूसरी ओर इसका लाभ ग्रामीण क्षेत्रों तक बहुत कम पहुंचा है जिसके कारण वे 'आर्थिक गतिहीनता' का सामना कर रहे है। किसान आत्महत्या की बढ़ती हुई घटनाएं भारत में कृषि संकट व ग्रामीण बैचेनी का ही परिणाम है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में आदिवासियों का विस्थापन आम बात है जिसके कारण उनमें व्यवस्था तथा सरकार के प्रति आक्रोश है।विकसित राष्ट्रों के समाजों की तुलना में हमारे देश में लैंगिक विभेद अधिक है। देश में पिछले कुछ दशकों में धार्मिक विभाजन एवं वैचारिक असहनशीलता स्पष्ट दिखाई देती है।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–12) के दृष्टि पत्र में समावेशी विकास पर बल दिया गया है। आर्थिक व सामाजिक समानता के बिना राजनीतिक लोकतंत्र खोखला व निरर्थक हैं। मैंने अपने पत्र में विषमताओं को

क्षेत्रीय, ग्रामीण–शहरी, सामाजिक, धार्मिक, लैंगिक तथा वैचारिक विषमता एवं विभेदों में वगीकृत करके इस तथ्य को रेखांकित किया है कि राष्ट्र के सभी क्षेत्रों तथा समाज के सभी वर्गों को आर्थिक विकास का लाभ समान रूप से मिले, तभी सुस्थिर व समावेशी विकास की अवधारणा सार्थक होगी।

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्देश्य है :–

1. भारतीय अर्थव्यवस्था तथा समाज में विद्यमान विषमताओं तथा उनके कारणों का अध्ययन करना।
2. उदारीकरण के बाद इन विषमताओं के बढ़ते अन्तराल एवं तीव्रता का अध्ययन एवं विश्लेषण करना।
3. भारतीय लोकतन्त्र के परिपेक्ष्य में आर्थिक व सामाजिक समावेशीकरण का अध्ययन करना।

शोध पद्धति

शोध की पद्धति मुख्यतः द्वितीय समंको पर आधारित वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है। प्रकाशित विभिन्न स्रोतों जैसे –आर्थिक सर्वेक्षण, मानवाधिकार व जनगणना रिपोर्टस, पत्र–पत्रिकाएं यथा योजना, कुरूक्षेत्र आदि के अलावा जर्नल्स में प्रकाशित शोध व आलेखों का अध्ययन तथा विश्लेषण किया है।

साहित्यावलोकन

वी. नचीमुथु ने अपनी पुस्तक Regional Economic Disparities in India (2009) में बताया है कि सन्तुलित क्षेत्रीय विकास भारतीय विकास रणनीति का आवश्यक अंग होते हुए भी आर्थिक विकास का लाभ देश के सभी राज्यों व क्षेत्रों को समानरूप से नहीं मिला और ऐतिहासिक कारणों से जनित असमानताओं को अभी तक भी समाप्त नहीं किया जा सका है।

कनक कान्ति बागची ने उनकी पुस्तक Regional Disparities in India's Socio-Economic Development (2011) में देश में क्षेत्रीय असन्तुलनों के कारणों में मानव जनित कारकों के अलावा प्राकृतिक भी माने हैं। देश में क्षेत्रीय स्तर पर स्वास्थ्य व शिक्षा के सूचकों में भारी अन्तर है। सामाजिक व आर्थिक असमानताएं राज्यों की प्रतिव्यक्ति सकल राज्य घरेलू उत्पाद में अन्तर के रूप में स्पष्ट दिखाई देती है।

अर्पिता बनर्जी व प्रवत कुमार कुडी ने Development Disparities in India (2013) में विकास के तीन प्रमुख आयामों– आर्थिक विकास, मानव विकास व कृषि विकास को समन्वित करके योजनागत विकास के चार दशकों में उत्पन्न क्षेत्रीय असमानताओं की प्रकृति तथा उनके कारणों को बताया है।

के. पी. कन्नन के द्वारा लिखित पुस्तक Intrrogating Inclusive Growth: Poverty and Inequality in India (2014) में नव उदारवादी नीतियों का रोजगार, गरीबी व असमानताओं पर अध्ययन करके बाजार समर्थक आर्थिक सुधारों की नीतियों की इस अवधारणा की आलोचना की है कि आर्थिक विकास के लाभ 'नीचे की ओर रिसाव प्रभाव' से गरीब व पिछड़ों को मिलने लगेंगे।

मधु सुदन घोष ने Liberalization,Growth and Regional Disparities in India (2013) नाम से प्रकाशित अपनी पुस्तक में आर्थिक सुधारों के बाद दो दशकों में राज्य व क्षेत्रीय स्तर पर कृषि, सेवा क्षेत्र व उद्योगों से सृजित आय में क्षेत्रवार वृद्धि तथा असमानताओं को बताया है तथा रोजगार की प्रवृत्ति, ग्रामीण गरीबी, नीचे की ओर रिसाव प्रक्रिया एवं ग्रामीण भारत में आर्थिक वृद्धि के समावेशीकरण पर बल दिया है।

थॉमस पिकेटी ने The Economics of Inequality (2015) में समय के साथ असमानता में परिवर्तन की व्याख्या के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तथा अवधारणा को बताया है तथा यह भी समझाया कि कैसे असमानता उत्पन्न होती है तथा अर्थशास्त्री कैसे उसे मापते हैं। पुस्तक में उन्होने आय व पूंजी के स्वामित्व में विचरण तथा इसे कम करने के लिए अपनाई जाने वाली विभिन्न नीतियों की पड़ताल, श्रम व पूंजी के सम्बंधों, शिक्षा एवं तकनीकी परिवर्तन के प्रभावों, पूंजी बाजार, विभिन्न कर प्रणालियों तथा श्रम संगठनों की भूमिका आदि पर महत्वपूर्ण विचार दिए हैं।

क्षेत्रीय विषमताएं

भारत में स्वतन्त्रता के समय देश के विभिन्न क्षेत्रों के मध्य अनेक आर्थिक व सामाजिक विषमताएं विद्यमान थी। 1950 के आरम्भिक दशक में योजनागत विकास का एक उद्देश्य इन विषमताओं एवं असंतुलनों को दूर करके संतुलित क्षेत्रीय आर्थिक विकास करना रहा है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए तत्कालीन केन्द्र सरकार ने विभिन्न नीतियां बनाई तथा आधारभूत ढ़ाँचे को मजबूत करने के लिए एवं देश के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में औद्योगिक विकास को बढावा देने के लिए सार्वजनिक निवेश के साथ–साथ निजी निवेश को प्रोत्साहन दिया। योजना काल के प्रथम तीन दशकों तक यह प्रक्रिया जारी रही परन्तु ये प्रयास अधिक सफल नहीं हुए। 1991 से देश में आर्थिक सुधारों का नया दौर प्रारम्भ हुआ जिसमें सरकार ने निजी निवेश को आर्थिक विकास का इंजिन माना। परन्तु जिन राज्यों में अच्छा भौतिक व सामाजिक बुनियादी ढांचा, पर्याप्त 'पूर्वगामी' व 'पश्चगामी' अनुबन्ध (Forward and Backward Linkages) तथा निजी पूंजी के दृष्टिकोण से आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के अनुकूल वातावरण था उनमें निजी निवेश तेजी से हुआ। दूसरी ओर जिन प्रदेशों में ये विशेषताएं नहीं थी उनमें निजी निवेश बहुत कम हो पाया। ये राज्य केन्द्र एवं अपनी सरकार के भरोसे सार्वजनिक निवेश को बढ़ाकर आर्थिक विकास के पथ पर चले।

विगत लगभग तीन दशकों में देश के भिन्न–भिन्न प्रदेशों में भिन्न आर्थिक वातावरण के कारण क्षेत्रीय विषमताएं बढ़ी हैं। जहां एक ओर पश्चिमी व दक्षिणी राज्यों में आर्थिक समृद्धि तेजी से बढ़ी है जैसे महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु आदि जबकि देश के पूर्वी व उत्तरी राज्य पीछे छूट गये हैं जैसे आसाम, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश आदि। वहीं दूसरी ओर इन पिछड़े राज्यों में जनसंख्या वृद्धि का भार अगड़े राज्यों की तुलना में अधिक रहा है परिणामस्वरूप पिछड़े अधिक आबादी वाले राज्यों में प्रति व्यक्ति आय नीची रह गई। अतः उदारीकरण के बाद आर्थिक समृद्धि का केन्द्र तो पश्चिमी–दक्षिण राज्यों की ओर स्थानान्तरित हो गया वहीं

P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-6, ISSUE-4, May- Supplementary Issue - 2018
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

जनसंख्या का केन्द्र उत्तरी व पूर्वी राज्यों की ओर चला गया। इसका एक अन्य पहलू यह भी है कि देश के विकासित क्षेत्रों में शिक्षा व रोजगार के अधिकाधिक अवसरों का सृजन हुआ वहीं पिछड़े क्षेत्रों में तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण श्रमशक्ति अधिक तेजी से बढ़ी जिसके कारण रोजगार की तलाश में इन क्षेत्रों से लोगों का पलायन व प्रवास हुआ और इन पिछड़े क्षेत्रों पर इसकाप्रभाव आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टिकोण से नकारात्मक हुआ है।

पिछले तीन दशकों में क्षेत्रीय दृष्टिकोण से सामाजिक विकास का सन्तुलन भी बिगड़ा हैं। आर्थिक रूप से सम्पन्न राज्यों में शिक्षा एवं साक्षरता, स्वास्थ्य एवं अन्य सामाजिक सुविधाओं की स्थितियां में सुधार हुआ है।इन राज्यों में आर्थिक विकास के लाभों का वितरण अधिक समावेशी रहा है और सामाजिक जुडाव भी बेहतर हुआ है। इनमें सामाजिक विकास कार्यक्रमों पर सार्वजनिक खर्च भी पिछड़े राज्यों की तुलना में अधिक हुआ। सम्पन्न राज्यों में सार्वजनिक व्यय में कुशलता, बेहतर राजकोषीय अनुशासन, शासन एवं कानून–व्यवस्था की स्थितियों में सुधार हुए हैं। निजी क्षेत्र द्वारा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं आदि क्षेत्रों में किया गया निवेश सार्वजनिक खर्च पर निर्भरता घटाता है। उच्च व तकनीकी शिक्षा में निजी निवेश के कारण पश्चिमी व दक्षिणी राज्यों का सामाजिक विकास तीव्र गति से हुआ है। परन्तु पिछड़े राज्यों में ऐसा संभव न हो सका जिससे क्षेत्रीय विषमताएं और बढ़ गई। देश के पिछड़े राज्यों में जो भी निजी निवेश देखने को मिलता है वह मुख्यतः खनन क्षेत्र में है जो उडीसा, झारखण्ड व छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों तक ही सीमित है।

सामाजिक प्रगति में अन्तर

देश के भिन्न–भिन्न राज्यों में सामाजिक प्रगति का स्तर भिन्न–भिन्न है। यद्यपि आर्थिक विकास के मापदंड पर तुलनात्मक रूप से सम्पन्न राज्यों में शिक्षा, स्वास्थ्य, कानून–व्यवस्था, रोजगार के अवसरों की उपलब्धता आदि विकास के संकेतक पिछड़े राज्यों से बेहतर है परन्तु सामाजिक प्रगति रिपोर्ट–2017 से यह उद्घाटित होता है कि आर्थिक वृद्धि व सामाजिक प्रगति के मध्य कोई प्रत्यक्ष व स्थायी संबन्ध नहीं होता है अर्थात् किसी राज्य का सकल घरेलू अधिक होने क बावजूद भी वहां का समाज पिछड़ा रह सकता है।

21 जून 2017 को सोशियल इम्पेरेटिव द्वारा जारी सामाजिक प्रगति सूचकांक में भारत 58.39 अंकों के साथ विश्व के 128 देशों में 93 वें स्थान पर रहा। इस सूचकांक में मानव जीवन के तीन आयामों का सामान्य औसत निकाला जाता है –

1. आधारभूत मानवीय आवश्यकताएं (Basic Human Needs)
2. कल्याण के मूल आधार (Foundation of Wellbeing)
3. अवसर (Opportunity)

भारत में सामाजिक प्रगति को मापने के लिए इन्सटीट्युट फॉर कम्पीटिटीवनेस द्वारा नीति आयोग NITI Aayog) के सहयोग से सामाजिक प्रगति सूचकांक–2017 विकसित किया है। सूचकांक के आंकड़े 2005–2016 के परिणामों का वर्णन करते हैं और बताते हैं कि देश में उल्लेखनीय आर्थिक परिवर्तनों के साथ जीवन की गुणवत्ता में समग्र सुधार हुए हैं परन्तु हम अभी भी स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी कई बुनियादी सुविधाओं को अपने नागरिकों को पर्याप्त रूप मे उपलब्ध कराने में विफल है।

सारणी – 1
सामाजिक प्रगति सूचकांक में राज्यों की स्थिति

उच्चतर	अंक	उच्च	अंक
केरल	68	दिल्ली	60
हिमाचल प्रदेश	68	कर्नाटक	60
तमिलनाडु	65	महाराष्ट्र	58
उत्तराखण्ड	64	छत्तीसगढ़	57
गोवा	63	गुजरात	57
मिजोरम	63	हरियाणा	57
सिक्किम	63	नागालैण्ड	57
पंजाब	62		
मध्यम	**अंक**	**निम्न**	**अंक**
आन्ध्र प्रदेश	56	त्रिपुरा	53
अरूणाचल	55	उडीसा	52
जन्मू व कश्मीर	55	राजस्थान	52
मध्य प्रदेश	55	उत्तर प्रदेश	51
मणिपुर	55	असम	49
मेघालय	54	झारखण्ड	48
पश्चिम बंगाल	54	बिहार	45

स्रोत : सामाजिक प्रगति रिपोर्ट – 2017

उपर्युक्त सारणी में राज्यवार सामाजिक प्रगति को दर्शाया गया है जिसके अध्ययन से पता चलता है कि राज्य अपने आर्थिक विकास को सामाजिक प्रगति में रूपान्तरित करने में समान रूप से सफल नहीं हैं। उदाहरण के लिए केरल सामाजिक प्रगति सूचकांक में सर्वोच्च स्कोरिंग (68 अंक) वाला राज्य है तथा गुजरात उच्च स्कोरिंग (57 अंक) परन्तु गुजरात का सकल राज्य घरेलू उत्पाद केरल से बहुत अधिक है। इसी प्रकार आन्ध्र प्रदेशउच्च आर्थिक विकास वाला राज्य होने के बावजूद सामाजिक प्रगति सूचकांक में मध्यम स्थान प्राप्त कर पाया है। बिहार सामाजिक प्रगति सूचकांक में सर्वाधिक पिछड़ा राज्य है। अतः सामाजिक प्रगति रिपोर्ट–2017 भी भारत में प्रादेशिक विषमताओं को स्पष्ट रूप से दर्शाती है।

आय व सम्पत्ति की असमानता में वृद्धि

भारत में आर्थिक असमानता एक वास्तविकता है और पिछले तीन दशकों में सरकारों की दोषपूर्ण नीतियों के कारण ये तेजी से बढ़ी है। जनवरी में ऑक्सफेम इण्डिया द्वारा जारी की गई ''द वाईडनिंग गेप्स : इण्डिया इनइक्विलीटी रिपोर्ट–2018''में भारत में असमानता, उसके कारण तथा समाधानों को बताया है। भारत में असमानता तात्कालिक नहीं है अपितु पूंजीपतियों व कुशल श्रम के पक्ष में दोषपूर्ण नीतियों के कारण है और यह बढ़ी है।

एक ओर जहां भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व में सर्वाधिक तेज गति से बढ़ने वाली अर्थ व्यवस्थाओं में से है

P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-6, ISSUE-4, May- Supplementary Issue - 2018
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

वहीं आय व सम्पत्ति के संकेन्द्रण के कारण वंचित वर्ग व हाशिये के लोगों तथा अमीरों के बीच अन्तराल बढ़ा है। देश के 1 प्रतिशत अमीरों को गत वर्ष सृजित कुल सम्पदा का 73 प्रतिशत हिस्सा मिला है जबकि 67 करोड भारतीयों की सम्पत्ति सिर्फ 1 प्रतिशत बढ़ी है। ऑक्सफेम इण्डिया की रिपोर्ट के अनुसार भारत के केवल 1 प्रतिशत अमीरों के पास देश की सम्पत्ति का 58 प्रतिशत हिस्सा है। देश में पिछले साल 17 नये अरबपतियों के जुड़ने से इनकी संख्या 101 हो गई है तथा बीते वर्ष इनकी कुल सम्पत्ति में 20.7 लाख करोड रुपयों की बढ़ोतरी हुई जो भारत सरकार के वर्तमान बजट के बराबर हैं। रिपोर्ट में एक अध्ययन कर अनुमान लगाया गया है कि ग्रामीण भारत में एक न्यूनतम मजदूरी पाने वाले श्रमिक को किसी बड़ी गारमेंट फर्म के शीर्ष वेतन वाले एक्जिक्यूटिव के बराबर आय तक पहुंचने में कुल 941 वर्ष लग जाएंगे।

आर्थिक असमानता पर अध्ययन करने वाले अर्थशास्त्रियों के एक अन्य समूह 'वर्ल्ड इनइक्विलिटीलैब' द्वारा जारी वर्ल्ड इनइक्विलिटी रिपोर्ट–2018में कहा है कि भारत में आर्थिक असमानता 1980 के बाद बहुत तेज गति से बढ़ी है तथा आय असमानता काफी ऊंचे स्तर पर पहुंच गई है। शीर्ष 0.1 प्रतिशत सबसे अमीरों की कुल सम्पदा बढ़कर निचले 50 प्रतिशत लोगों की कुल सम्पत्ति से भी अधिक हो गई हैं। अर्थशास्त्री प्रोफेसर लुकास चांसल व थॉसम पिकेटी ने आय वितरण में असमानता को बताने वाले गिनी गुणांक का मान भारत के लिए 2010 में 0.41 से 0.49 के मध्य आकलित किया जो वर्तमान में 0.5 या उससे भी अधिक है। अतः भारत में आय व सम्पत्ति के वितरण में अत्यधिक असमानता है तथा इसका अन्तराल उदारीकरण के बाद तेजी से बढ़ा है।

ग्रामीण–शहरी विभाजन

भारत का भौगोलिक क्षेत्रफल 3287263 वर्ग किलोमीटर तथा भू क्षेत्रफल (Land area) 29,73,190 वर्ग किलोमीटर है जिसका 70 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। जनगणना 2011 के अनुसार देश में 640867 गाँव, 7935 कस्बे तथा 4041 शहर हैं। आज भी भारत की दो–तीहाई से अधिक जनसंख्या गाँवों में निवास करती है।

सारणी – 2 भारत की जनसंख्या (ग्रामीण–शहरी)

भारत	कुल जनसंख्या	प्रतिशत
कुल	1210193422	100
शहरी	377105760	31.16
ग्रामीण	833087662	68.84

स्रोत : भारत की जनगणना–2011

सारणी से स्पष्ट है कि देश की 121 करोड कुल जनसंख्या में से 37.71 करोड शहरी तथा 83.3 करोड ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है जो क्रमशः 31.16 व 68.84 प्रतिशत है।

भारत में आर्थिक व सामाजिक दृष्टिकोण से शहरी–ग्रामीण विभाजन हमेशा मौजूद रहा है परन्तु पिछले तीन दशकों में इसका अन्तराल बढ़ा है। शहरी–ग्रामीण आय का अनुपात 1951 में जो लगभग 1.6 था वो आर्थिक नियोजन के प्रारम्भिक तीन दशकों (1980–81 तक) में बढ़कर 2.1 हो गया परन्तु उदारीकरण के बाद यह तीव्र गति से बढ़ा है। एक ओर जहाँमध्यम व बड़े आकार के शहर अभूतपूर्व आर्थिक सम्पन्नता का अनुभव कर रहे है वहीं दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्र 'आर्थिक गतिहीनता' के शिकार हैं। गाँवों में शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार जैसी बुनियादी आवश्यकताओं के अभाव के कारण जनसंख्या का शहरों की ओर पलायन की प्रवृत्ति में वृद्धि इक्कीसवीं सदी के भारत के लिए बड़ी घटना है। सामान्यतः अकुशल व अप्रशिक्षित श्रम शहरों में थोड़ा–बहुत रोजगार पा लेता है जिसके कारण विभाजन का अन्तराल और बढ़ा है।

ग्रामीण क्षेत्रों में आय व रोजगार का प्रमुख जरिया कृषि है। बदली हुई आर्थिक परिस्थितियों में कृषि क्षेत्र पर दबाव दिखाई देता है। अधिकांश किसान ऋणग्रस्त हैं। कृषि संकट के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में बेचैनी साफ दिखाई देती है अन्ततः इसकी परिणति देश में किसान आत्महत्या की बढ़ती हुई घटनाओं के रूप में परिलक्षित हो रही है। देश में कुल 17.91 करोड ग्रामीण परिवारों में से लगभग आधे भूमिहीन है, 37 प्रतिशत सीमांत कृषक, 7 प्रतिशत छोटे किसान, 3 प्रतिशत छोटे से मध्यम, 2 प्रतिशत मध्यम तथा केवल 0.1 प्रतिशत बड़ी जोतों वाले किसान हैं।

हमारे देश में 1990 के बाद दोषपूर्ण कृषि नीति, विकृत पूर्ति श्रृंखला तथा इसके शीर्ष पर बैठे भ्रष्ट लोग किसान की मेहनत को हड़प लेते हैं। जलवायु परिवर्तन, तापमान में असामान्य बदलाव तथा अनियमित वर्षा ने भी किसान के कष्टों को बढ़ाया है।

पिछले दो दशकों में अपनी फसल के खराब होने, उपजका उचित मूल्य न मिलने तथा ऋण जाल के कारण लाखों किसानों ने आत्महत्याएं की हैं। देश के विभिन्न भागों में बढ़ते किसानों के विरोध प्रदर्शन जैसे दिल्ली के जंतर–मंतर पर तमिलनाडु के किसानों का प्रदर्शन (2017), मध्य प्रदेश व राजस्थान (2017), महाराष्ट्र में हाल ही हुआ पैदल मार्च (2018) आदि कृषि संकट, ग्रामीण बेचैनी तथा किसान की निराशा व आक्रोश को बताने के लिए पर्याप्त हैं।

भारत की GDP में कृषि क्षेत्र का सापेक्षिक योगदान 1950–51 के 55.40 प्रतिशत से घटकर 2006–07 में 18 प्रतिशत तथा 2015–16 में केवल 17.46 प्रतिशत रह गया है जबकि इस पर आश्रित जनसंख्या का अनुपात अभी भी लगभग 50 प्रतिशत है। परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति आय शहरी क्षेत्रों से बहुत कम है जिसके कारण ग्रामीण–शहरी विभाजन की खाई और भी बढ़ गई है। ग्रामीण क्षेत्र ने केवल आर्थिक विकास में शहरों से पिछड़े हैं अपितु शिक्षा व साक्षरता के आंकड़े भी उनके पक्ष में नहीं है। जनगणना–2011 के अनुसार देश की कुल 74 प्रतिशत साक्षरता दर में शहरी 85 प्रतिशत व ग्रामीण साक्षरता 68 प्रतिशत है।

सामाजिक भेदभाव (Social Discrimination)

परम्परागत रूप से हमारा समाज जातियों में बंटा हुआ है। भारत में सामाजिक भेदभाव के अनेको रूप व प्रकार हैं, मैंने अपने अध्ययन में उनको तीन मुख्य भागों में

P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-6, ISSUE-4, May- Supplementary Issue - 2018
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

वर्गीकृत किया है–अ. जाति आधारित ब. धर्म आधारित स. लिंग आधारित भेदभाव।

जाति आधारित सामाजिक भेदभाव

भारत की कुल 121 करोड जनसंख्या में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या क्रमशः 16.6 एवं 8.6 फीसदी है। लगभग सात दशक की लोकतांत्रिक प्रक्रिया के बाद भी देश में दलितों व आदिवासियों के साथ बड़े पैमाने पर भेदभाव किया जाता है। ये वर्ग भारतीय समाज में हाशिये के लोग हैं और वंचना की पीड़ा भोग रहे हैं जिसका मूल कारण असमानता तथा सामाजिक भेदभाव है। नोबेल पुरस्कार प्राप्त प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रोफेसर आमर्त्यसेन ने बताया कि किस प्रकार विशेषकर पूरे एशिया में सामाजिक बहिष्कारों के कारण वंचनाओं ने जन्म लिया और व्यक्तिगत अवसरों की सीमाएं बांध दी गई। उनके अनुसार देश में वंचित वर्गों के लिए गरीबी एक बड़ी अयोग्यता है तथा जाति व्यवस्था ने असमानता पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

संविधान में वर्णित भेदभाव के विरूद्ध संरक्षण, सार्वजनिक क्षेत्र में आरक्षण आदि के कारण अनुसूचित जाति का समाज व राजनीति में समावेशीकरण हो सका है परन्तु समाज की असमान आर्थिक संरचना के कारण इनका एक विशेष वर्ग ही लाभान्वित हुआ है शेष आबादी गरीबी एवं अवसरों की सीमित उपलब्धता के कारण हाशिये पर है। दलित वर्ग की श्रमशक्ति का अधिकांश भाग अंसगठित क्षेत्र में कार्य करता है। जहाँकाम की दशाएं निम्न स्तरीय तथा श्रम अधिकार कमजोर हैं जो उनके शोषण का कारण बनता है।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरों (NCRB) की 2016 की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2015 की तुलना में 2016 में राष्ट्रीय स्तर पर अपराधों में 2.6 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है परन्तु अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के विरूद्धअपराधों में वृद्धि की दर क्रमशः 5.5 प्रतिशत व 4.7 प्रतिशत रही जो राष्ट्रीय औसत से लगभग दो गुणा है। देश भर में अनुसूचित जाति के विरूद्ध अपराध के मामले 2015 (38,670) से बढ़कर 2016 (40,801) हुए है, इनमें उत्तर प्रदेश में सर्वाधिक 10,426 (25.6%), बिहार 5,701 (14%) तथा राजस्थान 5,134 (12.61%) के साथ अग्रणी राज्य हैं। अनुसूचित जनजाति के विरूद्ध अपराध 2015 (6,276) से बढ़कर 2016 (6,568) दर्ज किये गये। अनुसूचित जनजाति के विरूद्ध हिंसा व अपराधों के मामले में मध्य प्रदेश 1823 (27.8%) के साथ प्रथम तथा राजस्थान 1195 (18.2%) व उडीसा 681 (10.4%)क्रमशः द्वितीय व तृतीय स्थान पर रहे हैं।

भारत में आर्थिक विकास की प्रक्रिया में आदिवासियों का विस्थापन आम बात है। औद्योगिक क्षेत्रों का विकास एवं इकाईयों की स्थापना, बड़ी परियोजना, खनन आदि के नाम पर इस वर्ग के लोगों को अपने अधिवासों से जबरन विस्थापित किया जाता है जिसके कारण व्यवस्था तंत्र एवं सरकारों के प्रति इनमें गुस्सा बढ़ा है। इसी आक्रोश की परिणति नक्सलवाद जैसी समस्याओं के रूप में दिखाई देती है।

धर्म आधारित भेदभाव

भारत एक धर्म निरपेक्ष समाजवादी लोकतांत्रिक गणराज्य है जिसमें विभिन्न जाति, धर्म व सम्प्रदाय के लोग निवास करते हैं। देश की कुल जनसंख्या में 20 प्रतिशत से अधिक आबादी धार्मिक अल्पसंख्यकों की है जिनमें मुसलमान प्रमुख हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार देश में 17.22 करोड़ (14.23%) मुस्लिम अल्पसंख्यक निवास करते है।

मानव विकास रिपोर्ट 2011 के अनुसार 2007–08 में 23.7% शहरी व 13.3% ग्रामीण मुस्लिम जनसंख्या गरीबी में जीवन व्यतीत कर रही थी। रोजगार की संरचना के आधार पर वर्ष 2001 में 20.7% कृषक, 22% कृषि श्रमिक एवं 8.2% श्रम घरेलू उद्यम में कार्यरत था। इसका अभिप्राय यह है कि अधिकांश मुस्लिम श्रम असंगठित क्षेत्र में कार्य करता है जहाँकार्य की दशाएं श्रम के अनुकूल नहीं है। साक्षरता एवं शिक्षा की स्थिति भी इस वर्ग में राष्ट्रीय औसत से कम है। वर्ष 2005 में जस्टिस राजेन्द्र सच्चर की अध्यक्षता में गठित समिति ने भी अपने अध्ययन में पाया कि भारत में मुसलमान बड़ी संख्या में अशिक्षित, बेरोजगार व गरीब है तथा धार्मिक आधार पर उनके साथ भेदभाव किया जाता है। अन्य पिछड़ा वर्ग OBC मुस्लिम तो दलितों से भी बुरी स्थिति में है।

मुस्लिम अल्पसंख्यकों की राजनीतिक व प्रशासनिक भागीदारी बहुत कम है। स्वतंत्रता के बाद सबसे कम सांसद 16 वीं लोक सभा में केवल 23 निर्वाचित हुए है। संसदीय लोकतंत्र में इस प्रकार के कम प्रतिनिधित्व पर सिविल सोसायटी ने गहरी चिंता व्यक्त की हैं क्योंकि 14.23 फीसद आबादी का देश की संसद में केवल 4.2 प्रतिशत प्रतिनिधित्व स्वस्थ्य एवं समावेशी लोकतन्त्र का सूचक नहीं है।

सारणी – 3 लोकतंत्र सूचकांक में भारत की स्थिति

वर्ष	स्थान	कुल अंक	चुनाव एवं प्रक्रिया बहुववाद	सरकार की कार्य प्रणाली	राजनीतिक भागीदारी	राजनीतिक संस्कृति	सिविल लिबर्टो
2006	35	7.68	9.58	8.21	5.56	5.63	9.41
2011	39	7.30	9.58	7.5	5.00	5.00	9.12
2014	27	7.92	9.58	7.14	7.22	6.25	9.41
2016	32	7.81	9.58	7.5	7.22	5.63	9.12
2017	42	7.23	9.17	6.97	7.22	5.63	7.35

स्रोत : डेमोक्रसी इंडेक्स, द इकोनोमिस्ट इंटेलीजेंस यूनिट

द इकोनोमिस्ट इंटेलीजेन्स यूनिट (EIU) द्वारा 167 देशों के लिए जारी इस सूचक में 8 से 10 अंकों के बीच पूर्ण लोकतंत्र, 6 से 7.9 का दोषपूर्ण लोकतंत्र माना है। भारत में वर्ष 2006 से 2011 के 6 वर्षों में लोकतंत्र में गिरावट दर्ज कही गई है। ग्लोबल डेमोक्रेसी इडेक्स–2017 में भारत 7.23 अंकों के साथ 42 वें स्थान पर रहा है। वर्ष 2014 से 2017 के वर्षों में भारत का स्थान व लोकतंत्र सूचकांक में कुल अंक घटकर क्रमशः 27 से 42 तथा 7.92 से 7.23 हो गये। सरकार की कार्य प्रणाली, राजनीतिक भागीदारी व संस्कृति तथा सिविल लिबर्टी जिस अनुपात में दोषपूर्ण होती जायेगी लोकतंत्र की संरचना व मूल्यों में भी गिरावट आएगी। देश में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के कारण अल्पसंख्यकों विशेषकर मुसलमानों को राजनीतिक संस्थाओं में उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल रहा है।

लिंग आधारित भेदभाव (Gender Based Discrimination)

भारतीय समाज पुरुष प्रधान है तथा पितृ सत्तात्मक व्यवस्था से संचालित है। सदियों से महिलाओं के साथ सामाजिक व आर्थिक स्तर पर भेदभाव किया जा रहा है जो अभी भी विद्यमान है। प्रसिद्ध दार्शनिक व चिन्तक अरस्तु के अनुसार 'किसी भी राष्ट्र में महिलाओं की उन्नति या अवनति पर ही उस राष्ट्र की उन्नति या अवनति निर्भर करती है।'

महिलाओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण को जानने के लिए लिंगानुपात तथा बाल लिंगानुपात (0 से 6 आयुवर्ग) अच्छे जनसांख्यिकीय सूचकांक हैं। भारत में प्रति एक हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 2011 में 940 है परन्तु बाल लिंगानुपात 2001 के 927 से घटकर 2011 में 914 तक आ गया है। बाल लिंगानुपात समाज में बालिकाओं के प्रति सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक प्रतिमानों को दर्शाता है। महिलाओं के प्रति हिंसा, भेदभाव तथा पुरुषवादी सामाजिक–आर्थिक ढ़ांचे के कारण देश में बाल लिगांनुपात चिंताजनक स्तर तक पहुंच गया है। इस अनुपात के घटते जाने का अर्थ यह भी है कि बालिका भ्रूण को माँके गर्भ में ही मार दिया जाता है। समाज की इस प्रकार की विकृत मानसिकता उनके विकास को अवरूद्ध करती है।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड व्यूरो (NCRB) की रिपोर्ट–2016 के अनुसार भारत में 2015 की तुलना में वर्ष 2016 में महिलाओं के प्रति अपराधों में वृद्धि 2.9 प्रतिशत हुईहै परन्तु बलात्कार के मामले 2015 में 34,651 से बढ़कर 2016 में 38,497 दर्ज हुए हैं तथा यह वृद्धि 12.4 प्रतिशत है। यौनिक हिंसा व बलात्कार की तेजी से बढ़ती घटनाएं हमारे समाज के लिए गंभीर विचारणीय मुद्दा है। हाल में चर्चित जम्मू के कठुआ तथा उत्तर प्रदेश के उन्नाव की घटनाएं वीभत्स एवं अपराधी पुरुषवादी विकृत ढ़ांचे के चर्म उदाहरण हैं।

देश में पर्याप्त कानूनी प्रावधानों के बावजूद महिलाओं को उनके सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक अधिकार नहीं मिले हैं। 86 प्रतिशत महिलाओं के श्रम का आर्थिक मूल्यांकन लगभग नगण्य है इसलिए वे आर्थिक रूप से पुरुष पर आश्रित हैं। देश में महिलाओं द्वारा किये जाने वाले घरेलू कार्यों जैसे खाना बनाना, कपड़े धोना, घर की साफ–सफाई, बच्चे की पढ़ाई आदि को आर्थिक गतिविधि (Economic Activity) नहीं माना जाता है। अतः इनके कार्यों की गणना सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में नहीं की जाती। कृषि उत्पादन में 75 प्रतिशत से अधिक योगदान के बावजूद भू–स्वामित्व पुरुष के पास है। श्रम के क्षेत्र में लैंगिक समानता के पैमाने पर विश्व के 134 देशों में भारत का 120 वां स्थान है।

देश का संविधान महिलाओं को न केवल समानता का अधिकार देता है अपितु उनके पक्ष में सकारात्मक रूख अपनाने के उपायों के लिए सरकारों को सशक्त भी बनाता हैं। इसके बावजूद भारत की 16 वीं लोकसभा के कुल 62 महिला सांसद हैं जो केवल 11.4 प्रतिशत है। भारतीय समाज में प्रचलित मूल्य व प्रतिमान महिलाओं के सामाजिक व आर्थिक विकास में अवरोधक है।

निष्कर्ष व सुझाव

भारत का संविधान अपने नागरिकों के साथ किसी भी प्रकार के भेदभाव का निषेध करता है परन्तु हमारे समाज में आर्थिक व सामाजिक विषमताएं अन्यायकारी रूप धारण कर चुकी हैं। उदारीकारण के बाद आर्थिक समृद्धि में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है परंतु इसका लाभ सभी नागरिकों व क्षेत्रों को समान रूप से नहीं मिला है। परिणामस्वरूप देश में पहले से ही विद्यमान सामाजिक व आर्थिक विषमताएं न केवल और बढ़ी हैं अपितु इनमें अन्तराल भी बढ़ गया है। दोषपूर्ण नीतियों के कारण भारत की अधिकांश जनता आर्थिक विकास की प्रक्रिया से बाहर कर दी गई है।

प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक प्रोफेसर एम. एस. स्वामीनाथन के अनुसार भारत में असमानता दोषपूर्ण राजनीतिक व आर्थिक नीतियों का परिणाम हैं। कृषि क्षेत्र में सुधारों के लिए हमारी रणनीति इस प्रकार की होनी चाहिए कि अच्छे मानसून के लाभ अधिकतम तथा जलवायु परिवर्तन के बुरे प्रभाव न्युनतम हो सकें। ग्रामीण–शहरी अन्तराल को कम करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों के समन्वित विकास के लिए लोगों की सहभागिता सुनिश्चित की जाए। विकास की प्रक्रिया में अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्र, देश के सभी अँचल एवं समाज के सभी वर्ग (गरीब–अमीर, ग्रामीण–शहरी, महिला–पुरुष) सभी जाति एवं सम्प्रदाय शामिल हो अर्थात् आर्थिक विकास समावेशी हो यह सुस्थिर एवं सतत विकास के लिए अनिवार्य है।

आय में वृद्धि से स्वच्छ पेयजल, स्वच्छता, साक्षरता तथा बुनियादी शिक्षा तक पहुंच आदि में तो सुधार होता है परन्तु यह व्यक्तिगत सुरक्षा की स्थितियों में सुधार की गारण्टी नहीं है। समावेशी विकास के लिए आर्थिक व सामाजिक प्रगति दोनों की आवश्यकता होती है। भारत जैसे विविधताओं से भरे राष्ट्र के लिए आर्थिक विकास की प्रक्रिया एवं पथ समावेशी हो यह अपरिहार्य है। अतः समावेशी विकास न केवल आर्थिक आवश्यकता है अपितु सामाजिक एवं नैतिक अनिवार्यता के साथ–साथ नीति निर्माताओं व लोकतंत्र के लिए गंभीर चुनौती भी है।

References

1. *Nachimuthu, V. (2009) ; Regional Economic Disparities in India,NewCentury Publication.*
2. *Ghos, Madhusudan (2013) ; Liberalization, Growth and Regional Disparities in India, Springer.*
3. *Baghchi, K.K. (2011). Regional Disparities in India's Socio-Economic Development. New Century Publication.*
4. *Kurian, N.J.(2007) Widening Economic & Social Disparities Implications for India. Review Article. India Jmed Res 126, Pp 374.*
5. *Swaminathan, M.S. (2015) Impact of Climate Change and Sustainable Agriculture. Yojana Dec. 2015.*
6. *Harriss-White, B. and Prakash, A. (2010). Social Discrimination in India: A Case for Economic Citizenship. Oxfame India Working Paper Series, Oct. 4, 2010.*
7. *Udin, Nazeer (2012). Muslim Minority Exclusion and Development Issues : Need for Inclusive Policy. Zenith International Journal of Multi disciplinary Research. Vol.2, January 2012 pp. 395-402.*
8. *सिंह, आशुतोष कुमार (2015), बदलते गांव, उभरता भारत, कुरूक्षेत्र, दिसम्बर 2015 पृष्ठ संख्या 6–11*
9. *चौधरी, कृष्ण चन्द्र (2013), ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण, कुरूक्षेत्र अगस्त, 2013.*
10. *पई सुधा (2013), वंचित वर्ग का बहिष्कार और हाशिये की स्थिति। योजना अगस्त 2013.*
11. *नामदेव (2013), समावेशी लोकतंत्र : आदर्श और यथार्थ। योजना, अगस्त 2013.*
12. *सिंह, रहीस (2013) विषमता में समावेशी लोकतंत्र कैसे संभव, योजना, अगस्त 2013.*
13. *Economic Survey 2016-17, Government of India, 2017.*
14. *Socio Economic Caste Census (SECC) for Rural India 2011, GOI, 2015.*
15. *Census of India-2011 Report. GOI*
16. *National Crime Record Bureau Report 2016, The Ministry of Home Affairs, GOI, 2017.*
17. *Social Progress Index : Sates of India, Social Progress Report- 2017*
18. *Sachar Committee Report (2006). Social, Economic and Educational Status of Muslim Community of India. Nov. 2006.*
19. *http://tribunehindi.com/desh-men-badh-rahi-arthik-asamanta/*
20. *http://www.oxfamindia.org/pressrelease/2114*
21. *http://m.economictimes.com/news/economy/indicators/indian-economic-inequaliyty-widened-since-1980-report/articleshow/62070475.cms*